समयसार, कलश ४१। ४१ वाँ कलश है। **अब यहाँ प्रश्न होता है...** है न ऊपर? ऐसा जो पूछता है, उसे उत्तर है, ऐसा कहना है – एक बात। क्या पूछता है? रंग, गन्ध, रस, स्पर्श, संहनन, संस्थान, शरीर, वर्ग, वर्गणा, कर्म, ये सब रंग में जाते हैं और अध्यवसाय राग-द्वेष-संक्लेश ओर विशुद्ध परिणाम, ये सब राग में जाते हैं और संयमलब्धिस्थान, गुणस्थान,

---

१. अर्थात् किसी काल उत्पन्न नहीं हुआ। २. अर्थात् किसी काल जिसका विनाश नहीं। ३. अर्थात् जो कभी चैतन्यपने से अन्यरूप-चलाचल नहीं होता। ४. अर्थात् जो स्वयं अपने आपसे ही जाना जाता है। ५. अर्थात् छुपा हुआ नहीं।

मार्गणास्थान, जीवस्थान, ये (सब) भेद में जाते हैं। यह रंग, राग और भेद से भिन्न, तीन में उनतीस बोल आ गये। आहाहा! जीव पूछता है कि **वर्णादिक...** अर्थात् जड़। **रागादिक...** अर्थात् जीव के विकारी परिणाम आदि। आदि अर्थात् गुणस्थान जीवस्थान आदि भेद, आहाहा! **जीव नहीं हैं तो जीव कौन है ?** ऐसा जिसे अन्दर से प्रश्न उत्पन्न हुआ है कि यह रंग, राग और भेद जीव नहीं है तो जीव है कौन ? आहाहा! ऐसा जिसे लक्ष्य में आया है, वह प्रश्न पूछता है। उसका उत्तर कहा जाता है। ऐसे प्रश्नकार को यह उत्तर कहा जाता है। आहाहा! इस प्रकार समझना चाहता है, उसे यह कहा जाता है - ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अनाद्यनंतमचलं स्वसंवेद्यमिदं स्फुटम्।
जीवः स्वयं तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते।।४१।।

तब यह भगवान आत्मा कौन है ? (कि) यह चैतन्यस्वभाव / स्वरूप आत्मा है। चैतन्य चेतनस्वभाव स्वरूप आत्मा है। इन रंग, राग और भेद से भिन्न चैतन्यस्वभावस्वरूप भगवान आत्मा है। यह चैतन्यस्वभाव कैसा है ? कि **जो अनादि है,...** आहाहा! यह चैतन्यस्वभाव जो आत्मा... जीव-अजीव अधिकार है न ? जीव, वह चैतन्यस्वभाव जीव और ये रंग, राग और भेद-ये सब पुद्गल-पुद्गल। आहाहा!

चैतन्यस्वभाव जो भगवान आत्मा, वह अनादि है। चैतन्यस्वरूप किसी काल में उत्पन्न हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! **अनन्त है,...** किसी काल में चैतन्यस्वभाव भगवान आत्मा, उस चैतन्यस्वभाव का नाश किसी काल में हो, ऐसा नहीं है। **अचल है,...** वह वर्तमान में अचल है। आहाहा! आदि नहीं और अन्त नहीं तथा वर्तमान में वह कम्पन आदि चलित नहीं है, वह तो ध्रुव... ध्रुव पड़ा है। आहाहा! **अचल है,...** वर्तमान में वह ज्ञायक चैतन्यस्वभाव भगवान आत्मा, वह चैतन्यस्वभाव जो आदि-अन्तरहित, वर्तमान चलाचलतारहित है। आहाहा! अर्थात् परिणमनरहित, कम्पनरहित, ऐसा वह चैतन्यस्वभाव भगवान आत्मा अनादि-अनन्त वर्तमान अचल... आहाहा! चलाचलरहित चैतन्यपने से अन्यरूप चलाचल-अन्यरूप किस प्रकार हो, पर्यायरूप हो या रागरूप हो, वह तो है नहीं। आहाहा! चैतन्यस्वरूप रंगरूप नहीं होता; रागरूप नहीं होता और भेदरूप नहीं होता। आहाहा!

तथा, **स्वसंवेद्य है...** वह स्वयं अपने से ज्ञात हो ऐसा है, अर्थात् ? कि वह रंग, राग

और भेद से वह ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। वह तो उनसे भिन्न चीज़ है। आहाहा! परन्तु चैतन्यस्वभाव आत्मा, उस चैतन्यस्वभाव की परिणति से ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा! ऐसा है। **स्वसंवेद्य है...** यह चैतन्यस्वभाव चैतन्यप्रकाश की मूर्ति प्रभु, वह चैतन्यस्वभाव आत्मा स्वसंवेद्य है। वह चैतन्यस्वभाव से पर्याय में ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा! चैतन्यस्वभाव वह त्रिकाल, वर्तमान चैतन्य परिणति से ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : भेद से अभेद ज्ञात हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस पर्याय से ही अभेद ज्ञात होता है। अनित्य से ही नित्य ज्ञात होता है। अनित्य ही नित्य को जानता है। नित्य, नित्य को कहाँ जानता है? आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं, भाई!

स्वसंवेद्य है... अर्थात्? उसे अनादि-अनन्त और अचल सिद्ध किया। चैतन्यस्वभाव भगवान आत्मा (है) परन्तु वह चैतन्यस्वभाव वर्तमान में ज्ञात किस प्रकार हो? वह चीज़ वर्तमान चलाचलतारहित है, तब अब वर्तमान में ज्ञात किस प्रकार हो? कि **स्वसंवेद्य है...** वह ज्ञान और निर्मल आनन्द की पर्याय द्वारा जाना जा सकता है। आहाहा! वह चैतन्यस्वभाव जो अनादि-अनन्त और अचल, ऐसा जो आत्मा... मूल तो आत्मा कहना है न? चैतन्यस्वभाव की बात करनी है न? आत्मा जब ऐसा नहीं-रंग, राग और भेद नहीं, तब चैतन्यस्वभाव है, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! समझ में आया? वह चैतन्यस्वभाव **स्वसंवेद्य है..** स्वयं आत्मा अपने से ही ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा! ऐसा कहकर अनादि-अनन्त और अचल चैतन्यस्वभाव वह आत्मा है। भेद, राग से भिन्न वह अपनी अन्तर निर्मल चैतन्य परिणति —स्व / अपने वेदन से वह ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा! आहाहा! ऐसी बात है।

इसीलिए कोई ऐसा कहे कि इस व्यवहाररत्नत्रय से यह आत्मा ज्ञात होता है, (किन्तु) ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : पुद्गल है....

पूज्य गुरुदेवश्री : पुद्गल है, पुद्गल ही है। पर्याय कहकर, परिणाम कहा परन्तु वह पुद्गल (है)। जीवद्रव्य यह है तो पुद्गल द्रव्य वह (रागादि) है। आहाहा! रंग, राग और भेद, वे पुद्गल हैं। आहाहा! उनतीस बोल को तीन बोल में समाहित कर दिया है। भाई में आता है, हुकमचन्दजी। 'मैं ज्ञानानन्दस्वभावी हूँ' उसमें ये तीन बोल लिये हैं। राग,

रंग से भिन्न, भेद से भिन्न-ऐसा लिया है। वे तीन बोल ये डाले हैं, हुकमचन्दजी। आहाहा! फिर तो उन्होंने पूर्ण हूँ, निराला हूँ, इतना लिया। निराला उससे, और यहाँ पूर्ण हूँ, चैतन्य अर्थात् आत्मा चैतन्यस्वभाव से सम्पन्न है, वह चैतन्यस्वभाव अनादि-अनन्त, वर्तमान में चलाचलतारहित, तथापि इस दूसरे प्रकार से कहें तो उसकी प्रतीति, ज्ञान और रमणता जो चैतन्य की है, उससे वह ज्ञात हो ऐसा है। आहाहा! ऐसी कठिन बातें हैं।

यह क्रियाकाण्ड लाख-करोड़ क्रियाकाण्ड करे तो उससे यह (आत्मा) ज्ञात हो, ऐसा नहीं है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का राग, वह तो राग में जाता है। रंग, राग और भेद में, देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम की श्रद्धा, पंच (महाव्रत) आदि, ये सब राग में / पुद्गल में जाता है। उस पुद्गल से आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! कहीं ऐसा कहा है साध्य-साधक में, भाई ने-दीपचन्दजी ने (कहा है कि) शुभभाव परम्परा साधक है। साध्य-साधक बोल में आता है, उसमें आता है। दीपचन्दजी के चिद्विलास में आता है। आहाहा! बाकी उनके आत्मावलोकन में आता है। आत्मावलोकन है न? दीपचन्दजी का? उसमें शुभभाव परम्परा साधक है, ऐसा कहा है। उसका अर्थ यह कि साधक तो शुद्ध चैतन्य, वही उससे ज्ञात होता है परन्तु साथ में शुभभाव है, उन्हें मिटाकर फिर जानेगा, इसलिए परम्परा का ऐसा आरोप किया है। आहाहा!

स्वसंवेद्य है... ओहोहो! एक श्लोक में तो... इसका वर्तमानरूप अनादि का, अनन्त काल का रहनेवाला और वर्तमान भी चलाचलरहित ऐसा जो ध्रुव भगवान, यह चैतन्यस्वभाव आत्मा है, वह वर्तमान चलाचलरहित वस्तु है परन्तु वर्तमान ज्ञात होता है, वर्तमान निर्मल परिणति से वह ज्ञात होता है, ऐसा है। आहाहा! ऐसी बात है। अर्थात् कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों एक हैं, तीनों साथ होते हैं। कलश-टीका में पूछा है कि तुम जब ऐसा कहते हो कि आत्मा दर्शन-ज्ञान से ज्ञात होता है और मोक्षमार्ग तो दर्शन-ज्ञान और चारित्र है। मिथ्यात्व जाने के पश्चात् समकित और ज्ञान तो हुआ परन्तु चारित्र तो हुआ नहीं। (उसके उत्तर में) कहते हैं, वह चारित्र आ गया, सुन! कलश-टीका में कहा है, दो-तीन बार कहा है। आहाहा! यह चैतन्य भगवान आत्मस्वभाव-चैतन्यस्वभाव आत्मा, आहाहा! उसके सन्मुख की प्रतीति, उसके सन्मुख का ज्ञान और उसके सन्मुख की स्थिरता, ये तीनों ही साथ हैं। आहाहा! चैतन्यपरिणति से स्वसंवेद्य में ज्ञात हो, उसमें तीनों ही (साथ

है)। आहाहा! निर्विकल्प सम्यक्, रागरहित ज्ञान और अस्थिरता रहित स्थिरता का अंश। आहाहा! उससे प्रभु चैतन्यस्वभाव आत्मा ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा!

जो **स्फुटम्...** जिसे ४९ गाथा में अव्यक्त कहा था, उसे यहाँ स्फुट (प्रगट) कहा है। आहाहा! वह तो प्रगट है। चैतन्य चमत्कार, आहाहा! चैतन्य की चमक तो प्रगट वस्तु है। आहाहा! किसे? कि जानता है उसे। समझ में आया? आहाहा! भगवान चैतन्य ज्योत, चैतन्य लक्षणस्वरूप, चैतन्यस्वभावस्वरूप... यहाँ तो (ऐसा कहा है)। ऐसा जो भगवान आत्मा प्रगट है, स्फुट है, व्यक्त है। पर्याय की अपेक्षा से गुप्त है, परन्तु स्वभाव की अपेक्षा से प्रगट-व्यक्त है। आहाहा! पर्याय है, उसे व्यक्त कहते हैं, तब वस्तु को अव्यक्त कहते हैं। क्योंकि पर्याय में आती नहीं इसलिए। आहाहा! ऐसी बातें हैं। परन्तु जब वस्तु को ही कहना हो, वस्तु चैतन्यस्वभाव भगवान की सत्ता चकचकाहटमय वर्तमान मौजूद प्रगट है। किसे? जिसने उसे जाना उसको। समझ में आया? है, भगवान आत्मा चैतन्यस्वभावस्वरूप प्रभु प्रगट है। आहाहा! ज्वाजल्यमान ज्योति प्रगट है, व्यक्त है, प्रसिद्ध है। आहाहा! वह चकचकाहट-चैतन्य की चकचकाहटमय भाव, द्रव्यरूप से प्रगट है। आहाहा!

मुमुक्षु : 'द्रव्यरूप से' इतना शब्द किसलिए प्रयोग किया?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यरूप से अर्थात् प्रगट है, वह किसे? वह प्रगट है, परन्तु किसे? जिसने जाना है, उसे वह प्रगट है। शब्दों में जरा अन्तर है। आहाहा! यह तो वीतराग तीन लोक के नाथ की वाणी है, ये सन्त उस वाणी द्वारा जगत के लिये प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा!

वस्तु तो वस्तुरूप से तो प्रगट / प्रसिद्ध / मौजूद है। आहाहा! वह तो पर्यायबुद्धि में अप्रसिद्ध था। आहाहा! ढँक गया था, पर्यायबुद्धि में वह इसे था ही नहीं। समझ में आया? वर्तमान अंश और रागबुद्धि में उसे मरणतुल्य कर दिया था। आता है न? आहाहा! उसे यहाँ जानने में आया, वह जीवित ज्योति प्रगट है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं। जैनदर्शन अलौकिक है। उसमें इन बनियों को हाथ आया, ये बनिये व्यापार में घुस गये हैं, निवृत्त नहीं हैं, यह निर्णय करने के लिये, तुलना करने के लिये (निवृत्त नहीं हैं)। आया है न, भाई-चन्दुभाई? जापान का-जापान का एक ऐतिहासिक है, पुराना ऐतिहासिक है। ६७ वर्ष की उम्र है इतिहास की बहुत पुस्तकें पढ़ीं और उसका लड़का भी ऐसा इतिहासकार है। बहुत खोज की, उसमें से जैनधर्म अर्थात् क्या? ऐसा कहा कि 'जैनधर्म अनुभूति

स्वरूप है' अर्थात् वीतराग पर्यायस्वरूप है, ऐसा। वीतराग पर्यायस्वरूप जैन, जैनधर्म। जैन न? जिसने राग को जीता है और वीतराग पर्याय प्रगट की है, वह जैनधर्म, परन्तु फिर उसने कहा भी है अन्दर...

मुमुक्षु : अभी तो सब बनियों को हाथ आया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा मार्ग इन बनियों को हाथ आ गया, बनिये व्यापार में कुशल-चतुर, वहाँ घुस गये। प्राणभाई! ऐसा उस इतिहासकार ने कहा है, हों! अभी जापान का लेख आया है। बनिये व्यापार के कारण निवृत्त नहीं होते। आहाहा! यह किया और यह किया, यह किया... पूरी होली सुलगी, पूरी अज्ञान की (होली) सुलगाते हैं, उन्हें यह तुलना करने का अवसर कहाँ है - ऐसा कहते हैं। उसने-जापानवाले ऐतिहासिक ने उपहास किया है। आहाहा!

ऐसा जो भगवान आत्मा रंग, राग और भेद से भिन्न, चैतन्यस्वभाव से अभिन्न... चैतन्यस्वभाव वह आत्मा - ऐसा कहना है न यहाँ तो? समझ में आया? रंग, राग और भेद से भगवान आत्मा भिन्न है। वे तीनों तो पुद्गल हैं - ऐसा कहा है। तब वह (आत्मा) कौन है? ऐसा शिष्य का प्रश्न था। उसका अस्तित्व किस प्रकार है? तो इनसे तो नकार (निषेध) किया तो उसकी अस्ति किस प्रकार है? कि उसकी अस्ति भगवान चैतन्यस्वभाव से भरपूर आत्मा चैतन्यस्वभावस्वरूप आत्मा है। यहाँ तो पहले वहाँ तक कहा था 'चैतन्यस्वभाव व्याप्त आत्मा'। आत्मा चैतन्यस्वभाव को व्याप्त ऐसा नहीं। चैतन्यस्वभाव व्याप्त आत्मा, शाश्वत् रहा हुआ चैतन्यस्वभाव, उसमें व्याप्त आत्मा है। समझ में आया? पहले आ गया था। देखो, ६८ गाथा में, 'चैतन्यस्वभाव से व्याप्त जो आत्मा'-६८ (गाथा के) नीचे की तीसरी लाईन, ६८ गाथा। चैतन्यस्वभाव से व्याप्त जो आत्मा, है? आत्मा चैतन्यस्वभाव को व्याप्त-ऐसा नहीं। चैतन्यस्वभाव से आत्मा व्याप्त। गुलाँट खायी है। अर्थात्? यह यहाँ सिद्ध करना है, वह चैतन्यस्वभाव, वह शाश्वत् रहा हुआ है, आत्मा उसमें वह व्याप्त है, व्यापक चैतन्यस्वभाव है, आत्मा व्याप्य है। पीछे-सर्वविशुद्ध (अधिकार) में चेतना में आता है न? चेतना से व्याप्त आत्मा है। आत्मा से चेतना व्याप्त है ऐसा नहीं। आहाहा!

जब आत्मा राग, रंग और भेद से भिन्न है, व्याप्त नहीं; तब वह क्या है? कि वह

चैतन्यस्वभाव से आत्मा व्याप्त है। आहाहा! ऐसा जो चैतन्यस्वभाव वह प्रगट है। है? **स्फुटम् प्रगट है...** भगवान चैतन्यपरिणति से ज्ञात हो-ऐसा वह वर्तमान प्रत्यक्ष है। आहाहा! समझ में आया? वह चैतन्य-मति-श्रुत की परिणति से ज्ञात हो, ऐसा वह वर्तमान प्रत्यक्ष है, प्रगट है, प्रसिद्ध है, है ऐसा विराजमान, विराजमान है - ऐसा यहाँ भान होता है, कहते हैं। आहाहा! स्फुट है छुपा नहीं, वह गुप्त नहीं। राग की पर्याय की अपेक्षा से चैतन्यस्वरूप आत्मा वहाँ गुप्त है, वह उसमें-राग में आया नहीं, आहाहा! परन्तु निर्मल परिणति द्वारा वह स्फुट-प्रगट (है) आहाहा! छुपा नहीं। आहाहा! वह निर्मल परिणति द्वारा छुपा रहे, ऐसा तत्त्व नहीं है। आहाहा! आहाहा! राग और दया, दान के विकल्प के काल में वस्तु वहाँ गुप्त है, वह स्वभाव रागरूप हुआ ही नहीं। आहाहा! राग और दया, दान के विकल्प तथा अशुभ के काल में वह चैतन्य गुप्त है; वह इनमें आया नहीं; इसलिए उसकी अपेक्षा से वहाँ गुप्त है परन्तु शुद्धपरिणति की अपेक्षा से वह प्रत्यक्ष प्रगट है। आहाहा! शैली तो देखो! आहाहा! गजब बात है। कितनी स्पष्ट? आहाहा!

देखो! आत्मा ऐसे ज्ञात होता है और वह ज्ञात होता है, उसमें वह प्रत्यक्ष और प्रगट है, ऐसा ज्ञात होता है परोक्ष है और अप्रगट है, वह राग की क्रीड़ा में बैठा हो उसे है। है? आहाहा! जो व्यवहाररत्नत्रय के राग में-क्रीड़ा में पड़ा है, उसे तो भगवान अप्रत्यक्ष है, गुप्त है परन्तु फिर भी वह वस्तु रागरूप नहीं हुई, राग के काल में गुप्त चीज़ है, वह रागरूप नहीं हुई। आहाहा! और जब ज्ञान की शुद्ध परिणति द्वारा / स्वसंवेदन द्वारा ज्ञात हो, तब वह गुप्त नहीं रहता। आहाहा! आहाहा! ऐसा स्वरूप है। जिनदेव का आत्मा अर्थात् जिनदेव का अर्थात् जिनस्वरूपी आत्मा, ऐसा।

'घट घट अन्तर जिन बसै घट घट अन्तर जैन।
मत मदिरा के पान सौ मतवाला समझे न॥'

आहाहा! कहो शशीभाई! ऐसा स्वरूप है। वह प्रगट है, छिपा नहीं। आहाहा! वह ढँका हुआ नहीं है। आहाहा! वह जो गुप्त था, उसे यहाँ प्रगट हो गया है, कहते हैं। राग और दया, दान के विकल्प की परिणति में वह वस्तु गुप्त थी। आहाहा! परन्तु जिसका-भगवान आत्मा का स्वभाव चैतन्य है, ऐसी स्वपरिणति के वेदन से देखा, जाना, उसे प्रत्यक्ष और प्रगट है। आहाहा! ऐसी चीज़ है! बहुत संक्षिप्त शब्दों में, बहुत ही थोड़े शब्दों में... आहाहा!

प्रसिद्ध किया है। टीका का नाम आत्मख्याति है न? आहाहा!

यह भगवान आत्मा चैतन्यस्वभावी वस्तु, यह चैतन्यस्वभावस्वरूप अपनी परिणति से... राग-द्वेष वह अपनी परिणति नहीं। आहाहा! वह तो पुद्गल है, कहते हैं। आहाहा! उसमें उसके कारण तो वह गुप्त है, क्योंकि उसमें नहीं है परन्तु चैतन्यस्वभाव आत्मा की अपनी वेदन-स्वपरिणति ज्ञान-दर्शन-चारित्र की स्वपरिणति से वह प्रत्यक्ष है, प्रगट है। है तो वह है। राग के समय भी है, वह तो है, परन्तु जानने के काल में वह है, वह। है प्रत्यक्ष और प्रगट है - ऐसा कहते हैं। आहाहा!

आहाहा! क्या शैली! सन्तों के थोड़े शब्दों में उन्होंने प्रसिद्ध किया, किसे? आहाहा! उसकी जाति की परिणति में उसे प्रसिद्ध किया। कुजाति से वह प्रसिद्ध हो सके, ऐसा नहीं है। आहाहा! आहाहा! अभी यह पूरा विवाद है न? शुभभाव से होता है, शुभभाव से होता है... अरे भगवान! उस राग से भिन्न... राग को तो पुद्गल कहा न, प्रभु! वह चैतन्य की जाति नहीं है और राग में चैतन्य का कोई अंश नहीं है, चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग / भक्ति आदि (हो), उसमें भगवान चैतन्य जो प्रभु है, उसका कोई अंश राग में नहीं है। आहाहा! इसलिए तो उसे अचेतन कहकर पुद्गल कह दिया। जैसे पुद्गल अचेतन है, वैसे राग अचेतन है। आहाहा! समझ में आया?

गाथा, यह २९ बोल के पश्चात् यह गाथा आयी है। संसार अवस्था में भी यदि वह राग से एक हो तो रूपी हो जाये, ऐसा कहकर निकाल दिया है। रूपी हो तो मोक्ष होने पर भी रूपी साथ में रहे क्योंकि इसका स्वभाव होवे तो! आहाहा! (ऐसा) करते-करते कहकर अब यहाँ यह डाला। आहाहा! कलश चढ़ाया, कलश! मन्दिर बनाकर सोना का कलश चढ़ाते हैं न? आहाहा! सोना का अर्थात् जंगरहित; इसी प्रकार यह रागरहित चैतन्य का चमत्कार निर्मल परिणति द्वारा ज्ञात होता है। आहाहा! समझ में आया?

अरे! ऐसा अवसर कब आवे, बापू! आहाहा! यह पुरुषार्थ करे तो मिले ऐसा है। आहाहा! सूक्ष्म उपयोग करे तो वह (आत्मा) मिले ऐसा है। इसका अर्थ यह हुआ कि सूक्ष्म उपयोग अर्थात् ज्ञान की परिणति। आहाहा! स्थूल उपयोग से वह नहीं प्राप्त होता। स्थूल उपयोग वह पर्याय पुद्गल में जाती है। आहाहा! मति-श्रुत का उपयोग सूक्ष्म करके ज्ञात हो, ऐसा है। इसका अर्थ यह हुआ कि इसकी परिणति ही मति-श्रुतज्ञान की जो निर्मल

है, आहाहा! उससे वह प्रगट-स्फुट-प्रत्यक्ष-गुप्त न रहे, वैसी प्रसिद्धि होती है, ऐसा यह आत्मा है। आहाहा! अब ऐसी बातें, फिर लोगों को एकान्त लगती है। आहा! भाई! मार्ग यह है, बापू! हैं?

श्रोता : एकान्त है नहीं परन्तु एकान्त लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यक् एकान्त ही है। सम्यक्, श्रीमद् ने नहीं कहा? 'अनेकान्त भी सम्यक् एकान्त ऐसे निज पद की प्राप्ति के अतिरिक्त अन्य हेतु से उपकारी नहीं है।' आहाहा! उन्होंने यह कहा है, वहाँ सम्यक् एकान्त है। सम्यक् एकान्त का भान हो, तब पर्याय और राग है, उसका ज्ञान होता है, वह अनेकान्त है। आहाहा! इस प्रकार सम्यक् एकान्त की ओर ढला है, तब उसे जो ज्ञान हो, वह ज्ञान स्व का भी होता है और राग बाकी है, उसका भी इसे ज्ञान होता है, तब अनेकान्त होता है। आहाहा! और अनेकान्त में भी यह सम्यक् एकान्त है, उसे रखकर, राग का ज्ञान होता है, तब अनेकान्त कहा जाता है। आहाहा! और प्रमाणज्ञान में भी त्रिकाली सम्यग्ज्ञान एकान्त निश्चय हुआ और फिर पर्याय तथा राग को जानना, वह प्रमाणज्ञान हुआ। दोनों का भेद, दो-दो हुए न? परन्तु यह प्रमाणज्ञान भी वास्तव में तो व्यवहारनय का विषय है। दो हुए न? अत: सद्भूतव्यवहारनय का विषय हुआ; इसलिए प्रमाण, वह पूज्य नहीं है - ऐसा लिया है। जिसमें पर्याय का निषेध नहीं आता, वह पूज्य नहीं है; निश्चय में पर्याय का निषेध आता है, इसलिए वह पूज्य है, तथापि प्रमाणज्ञान में भी निश्चय से अभेद है, ऐसा ज्ञान तो वहाँ है ही; उसे रखकर राग और पर्याय का ज्ञान मिलाया है, उसे उड़ाकर मिलाया है-ऐसा नहीं है; आहाहा!

मुमुक्षु : नहीं तो प्रमाणज्ञान नहीं रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं तो प्रमाणज्ञान नहीं रहेगा। यह है-ऐसा रखा है, तदुपरान्त उसका ज्ञान किया, तब तो उसे प्रमाण कहा जाता है। वह निश्चय एकान्त है, उसे उड़ाकर राग का ज्ञान हो, वह प्रमाणज्ञान ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म मार्ग... आहाहा!

मुमुक्षु : आप सूक्ष्म-सूक्ष्म तो बात करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सूक्ष्म नहीं, यही बात है। सूक्ष्म कहो, बारीक कहो, (परन्तु) वस्तु यही है। आहाहा!

स्फुट है 'इदं चैतन्यम्'... अब आया, कौन ? कि यह सब कहा, वह चेतन। अनादि -अनन्त, वर्तमान चलाचलतारहित, स्वसंवेद्यं प्रगट, वह क्या ? कि **'इदं चैतन्यम्'** यह चैतन्यस्वभाव। चैतन्यस्वभाव, हों! चैतन्यस्वभाव वह आत्मा फिर। वह जब आत्मा नहीं—रंग, राग, और भेद आत्मा नहीं—तब चैतन्यस्वभाव वह आत्मा, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! एक कलश में तो गजब किया है न! हैं ? सन्तों की शैली ही ऐसी है, दिगम्बर सन्त अर्थात् आहाहा! **यह चैतन्य 'इदं चैतन्यम्'** यह सब कहा वह—अनादि-अनन्त, चलाचलरहित, स्वसंवेद्य, स्फुट प्रगट। क्या ? कि **इदं यह चैतन्य** स्वरूप, देखा ? यह चैतन्यस्वरूप। आहाहा! प्रत्यक्ष कहा। यह चैतन्यस्वरूप। आहाहा! **इदं** शब्द है न ? आहाहा!

दिगम्बर सन्तों की बलिहारी है, जिन्होंने केवलज्ञान का विरह भुला दिया है। हें! आहाहा! केवलज्ञानी के अभाव में भी केवलज्ञानी को जो कहना है, वह प्रसिद्ध कर दिया है। आहाहा! सूक्ष्म बात पड़े, बापू! परन्तु मार्ग तो यह है, भाई! इस प्रकार सब यात्रा करना, भक्ति करना और पूजा करना, व्रत पालना तथा अपवास करना, यह कोई धर्म नहीं।

मुमुक्षु : आप इसे सूक्ष्म बात कहते हो और दूसरे टीका करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : करें, करें, उन्हें न जँचती हो तो करें, उसमें क्या है ? उसे जो बात बैठी है, उसके साथ न जँचे तो करे, उसमें कोई विशेषता नहीं है। हो उसमें कुछ... न बैठे इसलिए बोले, ऐसा ही बोले। आहाहा!

भगवान जिनेश्वरदेव चैतन्यस्वभाव आत्मा परमात्मा त्रिलोकनाथ कहते हैं, वह कैसे ज्ञात हो ? कि चैतन्यस्वभाव स्वरूप है, उसे चैतन्य की परिणति द्वारा ज्ञात हो ऐसा, आहाहा! क्योंकि वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग हैं, वे ऐसा कहते हैं कि सर्वज्ञ वीतरागस्वरूप, चैतन्यस्वरूप जो आत्मा... चैतन्यस्वरूप अर्थात् सर्वज्ञ और वीतरागस्वरूप आत्मा, चैतन्यस्वरूप का अर्थ 'ज्ञ' स्वरूप और चैतन्य है अर्थात् वीतरागस्वरूप है। आहाहा! भगवान तीन लोक के नाथ तीर्थंकर भी इन्द्र के समक्ष ऐसा कहते थे। आहाहा! वह यह बात है। प्रभु! हम वीतराग हैं तो तुझे कहते हैं कि तेरा स्वरूप जो है, वह वीतरागस्वरूप है, क्योंकि हम भी वीतराग हुए, वे कहाँ से हुए ? वीतरागस्वभाव में से हुए हैं। अत: हम वीतरागस्वभाव कैसे हों ? तो कहते हैं कि तू वीतराग चैतन्यस्वरूप आत्मा है। आहाहा!

कैसे जँचे ? और उसकी परिणति द्वारा, उसकी दशा द्वारा वह ज्ञात होता है। वीतराग परिणति द्वारा वीतराग ज्ञात होता है। आहाहा ! यह वीतराग का कथन है। हैं ? आहाहा !

जिनेश्वरदेव तीन लोक के नाथ तीर्थंकर प्रभु की वाणी में यह आया कि हम वीतराग-सर्वज्ञ हैं। तेरा स्वरूप भी सर्वज्ञ चैतन्य और वीतरागस्वरूप है (अर्थात्) स्वभावशक्ति। यह प्रगट; तो वीतराग चैतन्यस्वरूप, जिनस्वरूप, उसे जानने की परिणति भी वीतरागी होती है। आहाहा ! वस्तु वीतराग, परिणति वीतराग, वीतराग ने वीतरागपना बतलाया है। आहाहा ! समझ में आया ? लोगों को कठिन पड़ता है, वैसे लोगों को निवृत्ति नहीं मिलती और एकाध घण्टा हो तो यह जरा सामायिक करो, प्रौषध करना, प्रतिक्रमण किया, निवृत्त हो तो भक्ति-वक्ति शत्रुंजय की यात्रा और गिरनार की (यात्रा)। उसमें है कहाँ धर्म ?

मुमुक्षु : कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा हो तब...

पूज्य गुरुदेवश्री : कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा हो या होली की पूर्णिमा हो—फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा, उसके साथ क्या सम्बन्ध है ? आहाहा ! प्रभु ! तू कौन है ? कहाँ है ? ऐसे परमात्मा ने ऐसा कहा, प्रभु ! तू तो जिनस्वरूप है, चैतन्यस्वरूप है, वीतरागस्वरूप है। आहाहा ! प्रभु ! यदि तू जिनस्वरूप न हो तो जिनपना पर्याय में कहाँ से आयेगा ? आहाहा ! कहीं बाहर से आता है ? भाई ! तुझे पता नहीं। आहाहा ! यह चैतन्य **इदं** आत्मा-ऐसा कहा न ? **'इदं चैतन्यम्' 'इदं चैतन्यम्'** आहाहा ! **यह चैतन्य...** अर्थात् कि सर्वज्ञस्वभावी। **यह चैतन्य...** अर्थात् वीतरागस्वभावी। आहाहा ! **यह चैतन्य...** अनादि-अनन्त है, चलाचलतारहित है, वर्तमान शुद्ध परिणति / वीतराग परिणति द्वारा वीतरागस्वरूप ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा ! सम्यग्दर्शन-ज्ञान वह शुरुआत, वह भी वीतरागी पर्याय है। कोई सम्यग्दर्शन को रागवाला कहे, परन्तु बापू ! वह तो जब दोषवाला बताना हो तो वह चारित्र का दोष है। सम्यग्दर्शन, है वह तो वीतरागी परिणति है। परिणति अर्थात् पर्याय। वह भगवान चैतन्य जब चैतन्यस्वरूप वीतरागस्वरूप जिनबिम्ब है, प्रभु अभी ही ऐसा है। अभी ऐसा, हों ! आहाहा ! उसे वीतरागी परिणति द्वारा स्वसंवेदन हो सकता है। आहाहा ! चैतन्यस्वभाव, चैतन्य की परिणति द्वारा ज्ञात हो, ऐसा है। चैतन्यस्वभाव, वीतरागस्वरूप जिनबिम्ब भगवान जिनबिम्ब आत्मा, वह

वीतरागी परिणति के अंश द्वारा ज्ञात हो ऐसा है। आहाहा! ऐसी भगवान की पुकार है। अनन्त तीर्थंकर-अनन्त केवलियों का (यह पुकार-फरमान है)।

अभी तो सब गड़बड़ उठी है। प्राणभाई! यह धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं मिलती और ये सब या तो बाहर की क्रिया करे कुछ थोड़ी; इसलिए हो गया धर्म (ऐसा मानते हैं)। अरे भाई! धर्म कोई अपूर्व चीज़ है, प्रभु! आहाहा! आहाहा! यह वीतरागस्वरूप चैतन्यस्वभाव, इस वीतराग परिणति द्वारा ज्ञात होता है, वह वीतराग परिणति धर्म है। समझ में आया? आहाहा!

यह कहा - **चैतन्य 'उच्चैः' अत्यन्त...** रूप से-विशेष से-खास '**चकचकायते**' **चकचकित-प्रकाशित हो रहा है...** आहाहा! सूर्य का प्रकाश... वह क्या आता है तुम्हारे? सर्च लाईट, सर्च लाईट, नहीं वहाँ? बाहुबलीजी में दो सर्च लाईट ऐसे रखते हैं न? इसी प्रकार यह चकचकाहट-चैतन्य की चकचकाहट सर्च लाईट है। आहाहा! जिसमें से चैतन्य का चकचकाट प्रकाश आता है, कहते हैं। आहाहा! उसमें से पुण्य, पाप, दया, दान का राग उसमें से नहीं आता, उसमें है नहीं। आहाहा! '**उच्चैः' यह चैतन्य 'उच्चैः'...** यह तो ऊँचा-अधिक **अत्यन्त...** रूप से बिराजमान। आहाहा! '**चकचकायते' चकचकित-प्रकाशित हो रहा है...** भाई! तुझे अन्धकार में-राग के अन्धकार में दिखता नहीं। आहाहा! राग के अन्धकार में... वह तो अचेतन है, उसमें चैतन्य कहाँ से दिखायी देगा? आहाहा! चाहे तो भगवान की भक्ति का, यात्रा का राग, दया-दान का राग, दान करोड़ों रुपये दिये हों, उसमें राग मन्द किया हो कदाचित्, वह राग, वह राग सब अन्धकार है, ऐ!

मुमुक्षु : वह अन्धकार और राग, प्रकाशस्वरूप आत्मा को ढँकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अन्धकार है, उसका ज्ञान कब होता है? कि चकचकाहट ऐसा ज्ञानस्वभाव (है), उसकी परिणति द्वारा ज्ञात हो, तब उसका व्यवहार से ज्ञान होता है। आहाहा!

वीतराग का मार्ग ऐसा है, बापू! अरे! लोगों ने कुछ का कुछ कर दिया और बेचारे जीवन को अफल करके चले जायेंगे। आहाहा! क्या श्लोक! आज मौके पर आ गया और रविवार को... आहाहा!

चकचकित-प्रकाशित हो रहा है, वह स्वयं ही जीव है। चैतन्यस्वभाव, चैतन्य स्वयं प्रकाश, स्फुट जो चकचकित हो रहा है, वह जीव है। चैतन्यस्वभाव ऐसा, ऐसा वह जीव है - ऐसा सिद्ध करना है न यहाँ तो ? उन रंग, राग और भेद से सहित, वह तो पुद्गल है; जबकि भगवान आत्मा चैतन्यस्वभाव से स्वयं चकचकित प्रकाशित हो रहा है, वह जीव है। आहाहा! (भाषा) समझ में आये ऐसी है ? भाषा बहुत कड़क ऐसी कुछ नहीं है, भाई! आहाहा! बात तो ऐसी भगवान! आहाहा! तेरी महिमा क्या कहना! ओहोहो... ! भाई! तू अन्दर चैतन्यस्वभाव ऐसा जीव सिद्ध करना है न यहाँ ? हें ? चैतन्यस्वभाव अकेला सिद्ध नहीं करना है। जैसे रंग, राग और भेद से पुद्गल सिद्ध किया; वैसे यह जीव सिद्ध करना है, प्रभु! आहाहा! यह चैतन्यस्वभावी जीव जो कि चैतन्यस्वभाव अनादि-अनन्त, चलाचलतारहित, अपने से वेदनयोग्य और प्रगट तथा उत्कृष्ट में उत्कृष्ट / अधिक चीज़ है वह... आहाहा! ऐसा जो चैतन्यस्वभाव, **वह स्वयं ही जीव है।** वह स्वयं जीव है। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा!

यह वाद-विवाद से कहीं पार पड़े ऐसा नहीं है। वस्तुस्थिति ऐसी है। अभी झगड़े-झगड़े व्यवहार के। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि तू जो व्यवहार कहना चाहता है, वह सब पुद्गल है, सुन न! भले अन्दर राग है, परन्तु राग वह निश्चय से चैतन्य का-चैतन्यस्वभाव जीव का अंश उस राग में नहीं है; इसलिए वह अचेतन है; अचेतन है, इसलिए पुद्गल है; पुद्गल है, इसलिए जड़ है। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा!

स्वयं ही जीव है। वह स्वयं जीव है। आहाहा! वह चैतन्यस्वभाव अनादि-अनन्त चलाचलरहित, वर्तमान वीतराग परिणति से-स्वसंवेदन से ज्ञात हो, ऐसा प्रगट, चकचकित उत्कृष्ट अतिशय विशेष वह स्वयं जीव है। आहाहा! उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! यह तो कहे—हिले, वह त्रस और स्थिर रहे, वह स्थावर जीव। अरे भगवान! यह सब व्याख्या ही खोटी है। आहाहा! समझ में आया ? यह तो अग्नि और वायु को त्रस में डाला है, पंचास्तिकाय में। अग्नि और वायु। भाई! जरा ऐसी गति करते हैं न ? एकेन्द्रिय है, तथापि पंचास्तिकाय में त्रस कहा है, पाठ है। प्रभु! तू त्रस भी नहीं, स्थावर भी नहीं, रागी भी नहीं, द्वेषी भी नहीं, पुण्यवाला नहीं, पापवाला नहीं, कर्मवाला नहीं, शरीरवाला नहीं, इज्जतवाला नहीं। आहाहा! तब तू है कौन प्रभु ? कि मैं तो चैतन्यस्वभावी जीव हूँ, मेरा जीवन तो

चैतन्यस्वभाव से जीना-टिकना है। आहाहा! ऐसा जिसे अन्तर प्रतीति और ज्ञान में ज्ञात होता है, तब उसने जीव यथार्थतः जाना कहा जाता है। आहाहा! तब यह आत्मा नवतत्त्व में आत्मा जाना तब कहा जाता है। आहाहा! क्योंकि नवतत्त्व में अजीवतत्त्व तो भिन्न तत्त्व है। (क्या) कहा? पुण्य-पाप वे नौ में भिन्न तत्त्व है, आस्रव-बन्ध भिन्न तत्त्व है। आहाहा! तब आत्मा क्या है? आत्मा कहो या जीव कहो, वह तो चैतन्यस्वभावी स्वयं जीव स्वयं है। आहाहा! वह सम्यग्दर्शन का विषय है। आहाहा! ऐसा जब ज्ञात हुआ, तब फिर रागादि भाग का व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान है, यह बारहवीं गाथा का अर्थ है। आहाहा!

भावार्थ—स्वयं जीव-भाषा तो देखो! वह चैतन्यस्वभाव है... है... और है। अनादि-अनन्त और वर्तमान है, चलाचलरहित ऐसा। वह चैतन्यस्वभाव है, है और है। जो है, वह स्वसंवेदन-स्वयं से ज्ञात हो ऐसा है। उत्कृष्ट चीज़ है, वह महा अतिशय उत्कृष्ट चीज़ है, अतिशय विशेष है, खास। आहाहा! वह जगत का सूर्य है कि जो दूसरी चीज़ को भी 'है' - ऐसा वह बतलाता है। आहाहा! धर्मास्ति, अधर्मास्ति और रागादि हैं, वे यह चकचकित भगवान आत्मा ज्ञात हुआ, वह जाने, ज्ञात होता है कि यह दूसरी चीज़ है, परज्ञेयरूप से वह, हों, रागादि परज्ञेयरूप से (हो) आहाहा!

अभी तो बहिन के बोल में यह भी आया था कि शास्त्रज्ञान है, उसमें जो है वह तो ज्ञेय निमग्न है, परज्ञेय निमग्न है। आहाहा! शास्त्र का ज्ञान है न! शास्त्र का। आहाहा! उसे बन्ध अधिकार में शब्द ज्ञान कहा है। शब्द ज्ञान कहो या परज्ञेय कहो। आहाहा! और जो परज्ञेय में निमग्न है। आहाहा! वह स्वज्ञेय का अनादर करता है। आहाहा! गजब बात है, इसमें उसे तो ऐसा हो जाता है कि मुझे इतना आया, यह मुझे ज्ञात हुआ, इतने शास्त्र जानता हूँ... अरे भाई! सुन, बापू! आहाहा! इस परज्ञेय में जो निमग्न है, वह स्वज्ञेय का अनादर करता है, ऐसी बातें हैं। राग तो ठीक परन्तु ज्ञान तो परज्ञेय कह दिया।

ऐसा जो भगवान, जो **वर्णादिक और रागादिक भाव जीव नहीं हैं किन्तु जैसा ऊपर कहा वैसा चैतन्यभाव...** यहाँ लेना है, लो (वही) **ही जीव है।** वह जीव है—ऐसा अन्तर्दृष्टि में ले, उसे ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय बना, तब वह जीव ऐसा है-ऐसा तुझे ज्ञात होगा।

विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)